Chapter-1

प्रथम अध्याय

" तबले का संक्षिप्त इतिहास एवं तबले के घरानों में अजराड़ा घराने का महत्व पूर्ण स्थान "

१-१ संगीत - तबले का संक्षिप्त इतिहास

१-२ प्राचीन ताल वाद्य (अवनद्ध वाद्य)

१-३ मृदंग

१-४ तबला उद्‌गम एवं विकास

१-५ (घराना) घराने का जन्म

१-६ दिल्ली एक पहचान

१-७ दिल्ली घराने का उद्‌गम (परिचय) विकास

१-८ अजराड़ा घराने का उद्‌गम एवं विकास

प्रथम अध्याय

१ तबले का संक्षिप्त इतिहास एवम तबले के विभिन्न घरानों में अजराड़ा घराने का स्थान :

१-१ संगीत - तबले का इतिहास :

नाद ब्रह्म ही सर्वश्रेष्ठ सौंदर्य समाहित संगीत कला का माध्यम है। परमेश्वर का विराट रुप ब्रम्हांड में है और सर्वत्र व्याप्त है। सत्यं शिवं सुंदरम एवं सच्चिदानंद में निहित सौंदर्य मूलक तत्वों का सम्बन्ध आनंद से है। भारतीय संगीत का आधार आध्यात्म है। "प्रथम रम तव तपोवने" ऋचाओं के पारायण से ही सामगान का प्रथम विकास हुआ। जब माता भारती के ज्ञान आकाश में विविध कला विधाओं का उदय हुआ।[१] इसी समय तपोवनों में संगीत वाद्य नृत्य नाटय को मिलाकर ६४ कलाओं का विशाल वटवृक्ष कार्यान्वित हुआ।

भारत धर्म प्रधान देश है। भारतीय विचारधारा में सदा ही लोक कल्याण की भावना निहित रही है। भारतीय संगीत साधकों का लक्ष्य मोक्ष प्राप्तिका तथा परम आत्मासे संम्बन्ध स्थापित करना रहा है। हमारी संगीत साधना ही ऐसी है कि मानव मन अत्यंत सूक्ष्म नाद अनुभव कर के ही योग्य बन पाता है।

---

१ कलाकुंज भारती अंक   संस्कार भारती लखनउ   नवम्बर २००४

इतिहास केवल पारस्परिक घटनाओं का संकलन मात्र नहीं है। वह सार्थक तभी होता है जब घटनाओं के माध्यम से समाज और राष्ट्र के सांस्कृतिक विकास का स्वरूप उभरे। संगीत के इतिहास में केवल सांगीतिक घटनाओं का श्रृंखल्यहीन संकलन अभीष्ट नहीं होना चाहिये, यह सत्य है कि भारतीय संगीत का इतिहास इतना विराट एवं व्यापक है कि एक एक युग पर विशाल ग्रंथों का निर्माण किया जा सकता है। भारतीय संगीत का तथा इतिहास की रचना का सम्बन्ध पूर्णतः सामने नहीं आया है। इतिहास अतीत की प्रत्येक सूक्ष्मातिसूक्ष्म घटनाओंका निरपेक्ष परिचय देने वाला अग्रदूत है। कोई भी तथ्य इतिहास की दृष्टिसे उपेक्षणीय नहीं है। आज भी संगीत की प्राचीन असंख्य पाण्डुलिपियाँ यत्र तत्र अप्रकाशित पड़ी हुई हैं। जब तक विद्वानों द्वारा अनुशीलन एवं औचित्यपूर्ण प्रकाशन न हो जाये, भारतीय संगीत के इतिहास की सांगोपांग अर्थपूर्ण रचना संभव नहीं है।[२]

ब्रम्हांड से तारोंका प्रमाणबद्ध परिभ्रमण, पृथ्वीका खुदका अपने चारों और परिभ्रमण करते सूर्य के आसपास घूमना, नियमबद्ध, ऋतुचक्र, समुंदर की मर्यादा इसी सृष्टि की भव्य घटनाओं के प्रमाण, दिल की धडकन, वृक्ष के

२. भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन - डॉ. अरुण कुमार सेन, पृष्ठ क्रमांक १

पत्तों की आवाज जैसे प्रतिदिन व्यवहार में सतत और सातत्य पूर्ण गति विधि चलती है। इसी प्रकार प्रकृति के अनुसार संगीत में वही सातत्य पूर्ण गति यानी लय की रफतार (हर तरह की रफतार) का महत्व होता है।[३]

संगीत (गायन वाद्य वादन) स्वराश्रयी होने के कारण क्षण जीवी है। यह स्वर मूलतः स्थितिमान है, जब कालसापेक्ष गतिमान होता है तब ऐसे प्रवाही लय तत्वों का सुरोंके साथ संयोग माना जाता है उसी समय अधिक चैतन्यपूर्ण अनुभव होता है।

इसी कारण स्वर और लय इनका संगम होने के कारण संगीत जीवित अथवा चैतन्य पूर्ण लगता है। कोई भी कलाकृति अथवा रचना का पूर्णत्वकी और आगे बढने के लिये उसमें आकृति बद्धता, एकसूत्रता का होना अत्यावश्यक है। स्वर संगीत का माध्यम है। किंतु संगीत की पूर्ण कलाकृति के लिये या अंतिम स्वरुप के लिये उसका लय तत्व के साथ संपर्क अत्यावश्यक है। स्वरोंके प्रवाह को और स्वर आलापों को संगीत कहा नहीं जा सकता; किंतु यह सत्य है कि, लयबद्ध स्वरोंको पद्धति के अनुसार, एकसूत्र स्वरों के ऐकत्री करण से जो रचना और कलावस्तु तैयार होगी वह केवल स्वरोंके आलापोंसे मिलनेवाले आनंद से श्रेष्ठतर आनंद दे सकते हैं।

---

३ तबला पंडीत अरविंद मुळगावकर पृष्ठ क्रमांक १

अभिव्यक्त करने वाला संगीत केवल स्वरों पर आधारित हो तो, उसे कलाकृति नहीं कहते है। सितार,सरोद वाद्यों में आलाप, जोडकाम, धृपद धमार में केवल नोमतोम और नृत्य में केवल हावभाव इनमें लय का भाव स्पष्ट नहीं होता है। इसी तरह यह वाद्यों में लागु पडता है।[४]

वेदोंपनिषदों की शुरुआत से ही भारतीय ताल शास्त्र बहुत गतिसे विकसित हुआ। पौराणिक मान्यता के आधार पर भगवान शिव के हाथ में जो डमरु दिखाई देता है उसका उपयोग तांडव नृत्य के साथ हुआ था, ऐसा माना जाता है। क्योंकि इस वाद्य की उत्पत्ति जब विश्व का निर्माण हुआ, लय का समन्वय हुआ उसी समय से इस वाद्य की उत्पत्तिं मानी जाती है। और इस वैज्ञानिक - युग में हमने उसे भगवान शिव का प्रतीक समान माना है वह भी मतमंतातर के बाद क्योंकि भगवान शंकरजी को ही नटराज के रुप में हम सभीने प्रदर्शित किया है। जिस प्रकार माँ सरस्वती के हाथ में वीणा, भगवान श्री कृष्ण की बांसुरी इत्यादि।

आदिमानव काल से ही जब भाषा का ज्ञान नहीं था उस समय भी बुद्धि के अनुसार उनको लय का ज्ञान तो था ही क्यों कि उनका जीवन क्रम तो चल ही रहा था। उस समय के जिन वाद्यों का उल्लेख मिलता है वह

---

४ तबला पंडीत अरविंद मुळगावकर पृष्ठ क्रमांक ५,६

स्थूल दृष्टिसे उदाहरणार्थ खोपड़ी,हड्डी,पत्थर इत्यादि वस्तुओं का उपयोग करते थे। कालांतर के बाद ट्रान्स,ढोल,याने धातु के बर्तन पर चमड़ा चढ़ाकर उसे चमड़े की वादी बनाकर खींचकर बांध देते थे उदाहरणार्थ ताशा,नक्कारा और ये आकार में भव्य थे। इनमें से कई वाद्यो का उल्लेख इजिप्त,निओस,लाँगो इनमें ई.सा पू २७०० और ५०० साल में इनका उल्लेख शिल्पों में दिखाई देता है। ग्रीस पर भारत और मैसोपोटामिया संस्कृतिका प्रभाव था और उसी समय बर्तन पर चमड़े का उपयोग किया जाता था।

भारतीय संस्कृति के स्थूल दृष्टिसे तीन विभाग हो सकते है।

प्राचीन युग : इस युग में संगीत का विवेचन प्रागैतिहासिक,प्राग्वैदिक एवं संस्कृत ग्रंथों के आधार पर किया जा सकता है। अर्थात सभ्यता के उदय होने पूर्व से सन् १२०० तक का काल इसमें समाविष्ट किया जा सकता है।

मध्य युग : इस युगका १२०० से लेकर सन् १८०० तक का काल वर्गीकृत हो सकता है।

वर्तमान युग : इस युग का सन् १८०१ से लेकर आजतक की सांगीतिक गति विधियों का ऐतिहासिक विवेचन किया जा सकता है।[५] वैदिक संस्कृति

५ भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन - डॉ. अरुण कुमार सेन, पृष्ठ क्रमांक २

काल सिंधु,द्रवीड़,आर्य संस्कृति यह तीनो संस्कृतीयाँ अत्यंत विकसित संस्कृतियाँ थी। भारतीय संगीत शास्त्र में ताल का प्रारंभ कबसे हुआ इस पर प्रमाण देना असंभव है। नाट्य शास्त्र में तत्कालीन तालों का गंभीर रूप से विवेचन किया गया है। नाट्यशास्त्र में पूर्व ताल शास्त्र विकसित था। यह निःसदेह कहा जा सकता है। नंदिकेश्वर कृत भरतार्णव एवं अन्य प्राचीन ग्रंथोंसे इसके प्रमाण दिये जा सकते है। ऐसा प्रतीत होता है कि नाट्य शास्त्र के पूर्व कई ग्रंथ थे जो संभवतः देश में कहीं विद्यमान थे या काल गति में नष्ट हो गये हो। नाट्यशास्त्र में ब्रह्मभरत ग्रंथ की प्रतिध्वनि है जो नाट्यशास्त्र के प्रमाण अभिनव ग्रंथ है। नाट्य उपयोगी संगीत नृत्य एवं वाद्यों का इसमें विवेचन हुआ है।[६]

यह बात सत्य है कि वैदिक काल और तीनों संस्कृतियाँ पूर्ण विकसित रुप में थी। यह बात उत्खनन में दिखाई देती है,अपनी संस्कृति इतनी अत्यन्त प्राचीन संस्कृति है उसका समय लगभग ई.सां पूर्व ३००० साल माना जाता है।

शोधार्थी का नम्र निवेदन है की वैदिक काल में चार वेद जैसे ऋग्वेद,अथर्ववेद,यर्जुवेद,साामवेद सभी वेदों की ऋचाओं का गान लय द्वारा

६ भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन - डॉ. अरुण कुमार सेन, पृष्ठ क्रमांक ३

किया जाता है। और सामवेद तो पूरा संगीत मय ही है। वेदों में विभिन्न लय वाद्योंका विशद उल्लेख है। किन्तु तत्कालीन ताल स्वरुपों का उल्लेख या विवेचन उनमें नहीं है। समूहगान हेतु प्रमुख उद्गाता के साथ उपगाताओं की योजना होती है। गायन, वादन,नृत्य के साथ मात्रा गिनकर हाथ से ताली देने की प्रणाली थी।

वेद काल में दुन्दुभी इसके पहले भूमिदुन्दुभी वाद्यों का उल्लेख मिलता है। भूमि में गड़डा करके उस पर चमड़ा लगाकर उस पर लकडियों से आघात करते थे और उसी समय से चर्मवाद्यो का प्रभाव संगीत में था। रामायण, महाभारत इं.सा पूर्व ४०० से २०० वर्ष तक ये दोनों हमारे देश के महान ग्रंथ हैं। यद्यपि ये ग्रंथ संगीत शास्त्र के अंर्तगत नहीं आते किंतु इन दोनों ग्रंथों में नृत्य,गीत वाद्यों का उल्लेख है। रामायण मे संगीत को विशेष आदर प्राप्त था।[७] ऋषिमुनियों,राजपरिवार,पुरोहित,आम लोंगों में संगीत की निष्ठा पूर्वक साधना होती थी। स्वयं वाल्मीकि ऋषि ने लव,कुश द्वारा राम कथा को गीत के रुप में रामजी के राज दरबार में गवाया था। जब दशरथजी का देहांत हुआ तब पूरे अयोध्यामें संगीत बंध रखा गया।

भेरी मृदुंगवीणानां कोण संघटिटता पुनः
किमद्य शब्दो विरतःसदादीन गतिः पुरा ।।[८]

---

७ भारतीय संगीत की रुपरेखा डॉ.परांजपे पृष्ठ क्रमांक ६३
८ भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन - डॉ. अरुण कुमार सेन, पृष्ठ क्रमांक ९

शोधार्थी का कहान है, इसपर गौर करें तो यह सत्य है कि गायन, वादन, नृत्य ये तीनों एक दूसरे पर आधारित है। कालांतर में जिस प्रकार मानव समाज में परिवर्तन आया उसी प्रकार इन वाद्यों में भी परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देता है।

१-२ प्राचीन ताल वाद्य (अवनध्द वाद्य)

"सर्वभूतहितरतः" के मार्ग पर चलती हुई इस वैदिक कालीन प्रणालीके प्रकारों में वैदिक सांगीतिक शिक्षण संगीत के तीनों विधाए गीत, वाद्य, नृत्य के रुप में विद्यमान रही है। इस काल में संगीत, कला एवं शास्त्र के चरमोत्कर्ष पर प्रतिष्ठित थे।[९]

भारतीय संगीत का आधार अध्यात्म है। धारयते इती धर्मा, यज्ञो वै प्रथमो धर्मा, न विष्णु वै यज्ञ न सामो वैयज्ञ इससे साम की श्रेष्ठता स्थापित हो जाती है।[१०]

नटराज के डमरु नाद से हुआ नादब्रम्ह का आविष्कार :

शिव परमतत्व का नाम निर्देश है। तो ब्रह्म द्वारा उसी तत्व का निर्देश होता है। ब्रह्म का आविष्कार विश्व के जो मूलभूत तत्व के रुप में होता है उसका एक निर्देश मिलता है। नादब्रह्म जैसा, ध्वनि का सूक्ष्म व्यापक और अनुभूति से प्राप्य ऐसे तात्विक आविष्कार का निर्देश करने के लिये नाद शब्द का प्रयोग है। ऐसा तात्विक आविष्कार का निर्देश करने के लिये नाद शब्द का प्रयोग है। ऐसा तात्विक नाद और उसके जैसा नाद निर्देश हमको मिलता

---

९ कलाकुंज भारती पत्रिका संस्कार भारती, आग्रा पृष्ठ क्र १३

१० अष्टयामी ब्रिजभाषा काव्य एवं संगीत डॉ अेस अेल चतुर्वेदी

है। शंखनाद, घंटनाद, बंसीनाद, इन प्रयोगों में जहाँ ध्वनि याने सामान्य आवाज से विशेष श्रवण अनुभव कर देते है।[११] नादबह्म याने परमतत्व का नाद यह आकाश द्वारा ही प्रसारित हो सकाता है कारण आकाश का गुण शब्द है 'शब्दगुणम् आकाशम् ' नादब्रह्म का सर्वोत्तम तो प्रणव अथवा ओंमकार ॐ का ध्वनिस्वरुप परम तत्व का कैसा नादात्मक अनुभव करवाता है।

यह वाद्य भीतरसे पोले तथा मढे हुऐ होते है और हाथ या किसी वस्तु के ताड़न से शब्द उत्पन्न करते हैं, उसे आनध्द कहते है। इन्हें अवनध्द वाद्य और वित्त भी कहा गया है । भरत ने अपने नाट्य् शास्त्र में आनध्द वाद्य के अतंर्गत मुख्य रुप से पुष्कर वाद्य का वर्णन किया है। उन्होंने आनध्द जाति के वाद्यों की संख्या १०० बतायी है।

मानसोल्लास में मृदंग, हुडुक, मर्दल, पटहहुक्का, ढक्का, सेल्लुका, कुडुवा, डमरु, करटा, डक्कली, घटम्, भेरी, दुन्दुभी, निसाण, तम्बकी, घडस तथा त्रिवली आदिको आनध्द वाद्यों के अन्तर्गत माना गया है। संगीत रत्नाकर (६,१०,११) में पटह, मर्दल, करटा, घट, घढसा, ढवसा, ढक्कांकुडुक्का, कुडुका, रंज, डमरु, डक्का, मण्डिक्का, डक्कुली,

---

११ लेख संदेश गुजराती दैनीक

सल्लुका, झल्लरी, भाण, त्रिवली, दुन्दुभी, भेरी, निसाण, तुम्बुकी नामक वाद्यों की गणना आनध्द वाद्यो में की है।[१२]

संगीत पारिजात (२,६९,७०) में आनध्द वाद्यो में मृदंग, दुन्दुभी, भेरी, रंज, डमरु, पटह, चक्रवाद्य और हुक्का को मुख्य माना गया है।

वाद्यो के उपकरण :

गायन वादन नृत्य के आधारभूत तत्वों का विचार करने के के बाद हम इनके उपकरणों पर विचार करेंगें। जैसे चित्र कला के लिये रंग, तुलिका आदि, मूर्तिकला के लिये हथौड़ा, छेनी उपकरणों का प्रयोग होता है। उसी तरह गायन वादन में भिन्न भिन्न उपकरणों का प्रयोग होता है। इनको तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

१) मूल ढाँचा, २) कम्पित पदार्थ ३) प्रेरक पदार्थ

इन में से मूल ढाँचा, अर्थात् वाद्य के मूल आकार के निर्माण में अधिकांशतः उन्हीं वस्तुओंका प्रयोग किया गया है। जो प्रकृति प्रदत्त हैं। वाद्यों के क्रमिक विकास को देखते हुऐ यह भी पता चलता है कि उन प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं में जैसे जैसे समाज का विकास हुआ है कृत्रिम वस्तुओं का प्रयोग बढ़ता गया है।[१३]

---

१२ प्राचीन ताल वाद्य	लालमणी मिश्रा	पृष्ठ क्र ७
१३ प्राचीन ताल वाद्य	लालमणी मिश्रा	पृष्ठ क्र ९

घन वाद्यों का ढाँचा सूखी पत्तियों,ही,लकडी तथा अष्ट धातु का बना होता है। अबनध्द वाद्यों में ढाँचे के लिये मिट्टी,लकड़ी तथा अष्टधातुओं का प्रयोग होता है। धातुओं में विशेषतः लोहा,तांबा,पीतल तथा चांदी का प्रयोग देखा जाता है। यह भीतर से खोखले होते हैं। इसी कारण "ढोल में पोल" वाली कहावत प्रसिध्द हो गयी।

संगीत वाद्यों का वर्गीकरण :

अनाहत और आहत नाद के दो प्रकार हैं। आहत नाद जिसको हम सुन सकते हैं, व्यवहार में ला सकते हैं। ये संगीतात्मक ध्वनियाँ 'नखज, वयुज, चर्मज, लोहज तथा शरीर रज होती है। वीणा आदि वाद्य 'चर्मज' है ताल मंजीरा आदि 'लोहत' है तथा कंठ ध्वनि 'शरीरत' है। इन पांच प्रकार की ध्वनियों को उत्पन्न करने वाले वाद्यो को 'पंचमहावाद्यानि' कहा गया है। इन मे से एक ईश्वर द्वारा निर्मित है जो नैसर्गिक है तथा अन्य चार प्रकार के वाद्य मानव रचित है।[१४]

कई विद्वानोंने ध्वनियाँ तीन अथवा चार मानी है किंतु कोहल के मतानुसार ये पांच ही है। महर्षि भरत तथा दंत्तिल ने चार मानी है जो तत् आनध्द, घन, एवं सुषीर है। नारद ने तीन ही मानी है। अनध्द, तत् एवं

---

१४ प्राचीन ताल वाद्य लालमणी मिश्रा पृष्ठ क्र १०

घन।

प्राचीन युग में विकसित वाद्यों के प्रकारों को देखते हुऐ महर्षि भरत का वर्गीकरण सर्वथा उचित तथा पर्याप्त प्रतीत होता है।

ततं तन्त्रीकृतं ज्ञेयवनध्दं तु पौष्करम् ।

घनं तलस्तु विज्ञेयः सुषिसे वंश उच्चते ।।[१५]

भरत उस समय समस्त वाद्यों को आतोद्य भी कहते थे। महर्षि वाल्मीकि, कालिदास ने बहु वाद्य के सूचक के रुप में तूर्य शब्द का भी प्रयोग किया है। महाभारत में भी अनेक वाद्यों के साथ बजने के संदर्भ में तूर्य का उल्लेख हुआ है। पाली भाषा में तुरिया शब्द वृन्द वादन (ऑक्रेस्ट्रा) का द्योतक माना है।

इतिहास में केवल दो परिवर्तन विशेष परिलक्षित है। इन में से प्रथम है वितत् शब्द का प्रयोग जो अबनध्द के स्थान पर हुआ है, तानसेन ने अवनध्द शब्द का प्रयोग नहीं किया है।

"चरम मढयो जाको वितत् मुखर वितन सु कहे बखान"

याने जिसे पहले अवनध्द वाद्य कहते थे उसे तानसेन ने तित कहा है।[१६]

१५ प्राचीन ताल वाद्य लालमणी मिश्रा पृष्ठ क्र १३
१६ प्राचीन ताल वाद्य लालमणी मिश्रा पृष्ठ क्र १४

वाद्य प्रकार	अंग वाद्य	प्रत्यंग वाद्य
तत्	विपंची, चित्रा	कच्छपी, घोषवती आदि
अवनध्द	मृदुंग, पणव, दुर्दर	झल्लरी, पटह आदि
सुषिर	वेणु	शंख, डक्किनी आदि [१७]
घन		

शोधार्थी के मतानुसार चर्म वाद्यों से भी अध्यात्म की और बढ़ सकते है। संपूर्ण विश्व के सभी चर्म वाद्यों पर एक नजर करे तो चाहे वह हिन्दुस्तानी हो या पाश्चात्य हो सभी के मुख गोलाकार है। ऐसा क्यों? चाहे अति प्राचीन वाद्य हो या आधुनिक वाद्य तबला हो, या पाश्चात्य वाद्य कॉंगो, बॉंगो, ड्रम हो सभी के मुख गोल हैं इसका कारण क्या हो सकता है। याने सभी का मुख रूप एक समान होता हैं। ऐसा कोई भी चर्म वाद्य नहीं जो टेढ़ामेढ़ा हो या लंब चोरस हो। कहने का तात्पर्य है कि सभी अवनद्य वाद्य गोलाकार के रूप में है। भारतीय संगीत का मूल आधार ओंकार है। प्राचीन ओंकार अर्ध गोलाकार के रूप में दिखाई देता है। भारत के सभी मंदिरो के गुंबज या सभा मंडप सभी गोलाकार रूप में ही दिखाई पड़ते है। ऐसा क्यों?

शोधार्थी के नम्र मतानुसार गोलाकार से आवाज कंपन याने उसकी आस गूँजने के प्रक्रिया में सरलता प्राप्त होती है। ध्वनि को हवा में फेंकना और उसमें से आवाज निकालना यह एक प्रति ध्वनि के रूप में होता है।

१७ प्राचीन ताल वाद्य लालमणी मिश्रा पृष्ठ क्र १५

चाहे वह चर्म वाद्य हो,लोहज हो याने बाँसुरी, झांझर, शहनाई, वीणा, सितार यह सभी गोला कार के रूप में दिखाई देते हैं। भास्कराचार्य ने शून्य का शोध किया और पुरे विश्व में एक तहलका मच गया गणित के दृष्टिसे शून्य का महत्व बढ गया। इसी पर से ज्ञात होता है कि शून्य याने गोल और इसका महत्व कितना है जो पूरे विश्व का आधार है।

१-३ मृदुंग

अनेक शतकोंसे प्रचलित और सभी चर्म वाद्यो में प्रमुख यह एक ताल वाद्य है। हमारे यहाँ जितने संगीत के उपकरण बने, वे सब प्रायोगिक विज्ञान के नमूने हैं। ये मात्र तात्विक या सैद्धांन्तिक विश्लेषण नहीं के आधार पर थे। अपितु निरीक्षण, परीक्षण और प्रयोगों की प्रक्रिया के परिणाम स्वरुप हुआ था। संगीत के वाद्य ध्वनि की उत्पत्ति, उसके प्रकार, प्रभाव आदि के विश्लेषण और उसके प्रयोग की गाथा है। इसका प्रमुख उदाहरण है भरत मुनि रचित "नाटयशास्त्र"। भरत मुनि के इस ग्रंथ के ३३ वें अध्याय में मृदंग और अन्य वाद्य कैसे बने इसका वर्णन किया गया है। प्राचीन समय में एक गुरुकुल में स्वाति नामक मुनि रहते थे। एक दिन गुरुकुल मे अध्ययन अवकाश था और पानी का अभाव था। अतः स्वाति मुनि पानी के लिये निकले। चलते-चलते एक जलाशय के पास पहुँचे। जलाशय में कमल खिले हुऐ थे। उसके पत्ते तालाब में फैले हऐ थे।[१८]

अचानक बादल घिरे और हवा जोर से चलने लगी साथ ही मूसलाधार वर्षा होने लगी। पानी की धाराऐं धरती पर चारों और गिरने लगीं। इन

---

१८ भारत में विज्ञान की उज्वल परंपरा श्री सुरेश सोनी पृष्ठ क्र २५

पानी की धाराओं के पत्तों पर गिरने से एक मधुर ध्वनि निकलने लगीं। स्वाति मुनि आश्चर्य चकित हो देखने लगे और पत्तों पर पानी गिरने से उत्पन्न मधुर ध्वनि को मंत्र मुग्ध होकर सुनने लगे। जब उसका निरीक्षण करने लगे तो पाया कि पत्ते भिन्न भिन्न प्रकार के हैं, कुछ मध्यम है और कुछ छोटे हैं। पत्तों के भिन्न भिन्न आकार के कारण उन पर गिर रहे पानी से निकलने वाली ध्वनि भी भिन्न भिन्न थी। बडे पत्तों से गंभीर ध्वनि निकल रही थी। मध्यम पत्तों से मधुर तथा छोटे पत्तों से हृदय स्पर्शी ध्वनि उद्भूत हो रही थी। इस दृश्य और ध्वनि से वे एकाकार हो गये और गहरे विचार और अनुभूति में डूबे मुनि ने इन ध्वनियों को अपने हृदय में अनुभव वैसी ध्वनि उत्पन्न करने हेतु प्रयोग प्रारंभ किये। उस उद्येश्य से पत्तों पर पानी की धार, फिर धीरे धीरे अन्य साधनों से उसे उत्पन्न करना और इस प्रक्रिया में मृदंग, पणव, और दर्दुर मुरज आदि वाद्य यंत्रो का आविष्कार हुआ।[१९]

अदुम्बर नामक मृदंग जैसे दिखने वाला ताल वाद्य का उल्लेख वाजसनेय संहिता मे उपलब्ध है। उसी तरह रामायण काल में मुक इस जात का वाद्य उपलब्ध था। ई सन् ४०० में भरत मुनि ने अपने नाट्य शास्त्र में पुष्कर नामक वाद्य जो मृदंग जैसा दिखता था उसका वर्णन किया है।

---

१९ भारत में विज्ञान की उज्वल परंपरा श्री सुरेश सोनी पृष्ठ क्र २५

उस समय मृदंग के तीन भाग होते थे। उनमें एक वाद्य आंकिक था जो पृथ्वी पर लेटा रहता था और इसे दोनों ओर से बजाया जाता था। दूसरा ओर तीसरा भाग उर्ध्वक और आलिंग्य थे। जो खड़े रखे जाते थे। इन्हें एक ओर से बजाया जाता था। छठी,सातवीं शताब्दी के उपरांत इस में परिवर्तन हुआ और उर्ध्वमुखी वाद्य हट गया और केवल आंकिक वाद्य रहा इसे हम मृदंग कह सकते हैं।[२०]

यह वाद्य पहले मिटटी का बनता था किंतु कालांतर में इसे लकड़ी का रूप मिला और इसपर चमड़ा लगाकर दोनों और से इसको सुर में मिलाने के लिये गठ्ठों का उपयोग किया गया।

एक तरफ स्याही और दूसरी ओर आटा लगाते हैं। पंजा मिलाकर बजाने अथवा उंगलियाँ इकठ्ठी करके आघात करने से सुस्वर नाद पैदा होता है, प्रमाण बद्ध कंपन से इसका नाद शांत,गंभीर और सुश्राव्य लगता है। मूलतः साथ संगत का वाद्य है। कर्णाटक में दो प्रकार की वादन शैली है जो साथ,संगाथ जो लय को अनुसर के और उसके गति के साथ संगत करना और दूसरी शैली सीधी लय में न बजाकर आड़ में बजाते हुऐ संगथ करना। कोई राग का पूर्ण विस्तार होने के बाद मृदंग वादक स्वतंत्र वादन करता है।[२१]

२० ताल प्रकाश भगवत शरण शर्मा पृष्ठ क्र २१
२१ ताल प्रकाश भगवत शरण शर्मा पृष्ठ क्र २२

पखावज यह वाद्य मृदुंग की दुसरी आवृत्ति है। उसके ढाँचे में और वादन शैली में भिन्नता है मुख्यतः पखावज की लंबाई मृदंग से बड़ी होती है। पखावज का चमड़ा मृदंग से पतला होता है। और इसमें से निकला हुआ नाद सुस्पष्ट और आसदार होता है और भारतीय संगीत में प्रायः कर्णाटकी संगीत में मृदंग का उपयोग और उत्तर हिन्दूस्तानी संगीत में पखावज का उपयोग होता है।[२२]

मध्ययुगीन संगीत ग्रंथकारों ने मर्दल को मृदुंग कहना प्रारंभ किया। उत्तर भारत में मृदुंग का क्षेत्रीय नाम पखावज प्रचलित हो गया। उपर्युक्त परिवर्तनों के फलस्वरूप मृदंग तथा पखावज प्रसिध्ध हुऐ जो इस युग की सबसे बडी देन है। मृदंग के दक्षिण मुख पर आटा अथवा मिट्टी की पुलिका के स्थान पर लोहे के चूर्ण आदि से बना काला मसाला लगाते हैं, जिससे दो लाभ हुए। प्राचीन युग में लगने वाला लेप बार बार लगाना तथा उतारना पडता था, इस नये लेप से मुख का नाद गूंज युक्त और ऊँचा हो सका। ताल वाद्यों में मढ़े हुऐ चमडे पर मसाला लगाना भारत की अपनी देन है। और जो प्राचीन काल से चली आ रही है। महर्षि भरत के बताये हुऐ ढंग से इस मसाले का लेप होता था। शारंगदेव के काल से इसमें और सुधार हुआ। इस में लकड़ी की

---

२२ प्राचीन ताल वाद्य लालमणी मिश्रा पृष्ठ क्र ९२

राख, चावल, गुड़ आदि का मिश्रण होने लगा। अहोबल के काल में लौह चूर्ण दक्षिण मुख पर लगने लगा।[२३] अहोबल ने रत्नाकर के मर्दल को मृदंग कहा है औ उसका जो वर्णन किया है वो आधुनिक काल के पखावज के समान ही है। मृदुंग की लंबाई १२ मुठ्ठी तथा मध्य की गोलाई इस से कुछ अधिक होती है। मुख के बारह अंगुल का होता था। मुख के बाहरी ओर लोहे के दो कड़े लगे हुऐ होते थे जिन में २०, २० छिद्र होते थे। इन दोनों और के मुखों के चमड़े की बध्दियों से कस दिया जाता था। सुंदर ध्वनि उत्पन्न करने के लिये दाँयीं और के मुख पर मध्य में ६ उंगल स्थान पर लौहचूर्ण लगा रहता था तथा बायीं और आटा गुँध कर लगाया जाता था। इस मृदुंग के तीन भेद है मृदुंग, मर्दल, मुरज इन तीनो को ही मृदुंग कहते है। इस मृदुंग के मध्य में ब्रम्हा का वास है, बाँये मुख में विष्णु का, दाहिने मुख में शिव का और मृदंग के काठ, कड़ा, आदि में तैतीस कोटि देवता वास करते है। इसीसे इसका नाम सर्व मंगल है।[२४]

---

२३ प्राचीन ताल वाद्य लालमणी मिश्रा पृष्ठ क्र ९३
२४ प्राचीन ताल वाद्य लालमणी मिश्रा पृष्ठ क्र ९५

वाल्मीकि रामायण में भेरी, मृदुंग, प्रणव का उल्लेख मिलता है। ये तीनों युध्ध कांड के ४४ वे सर्ग के १२ श्लोक में प्रयुक्त हुऐ है। मृदंग सुंदर कांड के १० सर्ग के ४२ वे श्लोक में और ११ वे सर्ग के ६ श्लोक में भी प्रयुक्त हुआ है। पणव भी सुंदर कांड के ४३ वे श्लोक में है और ये तीनों एक साथ प्रयुक्त हुए है।

ततौ भेरी मृदुंगानां पणवानाँ च निःस्वनाः ।

शंखने मीस्वानो निश्रः संभभूवार भुतोपमाः ।।[२५]

इन तीनों का रणसंग्राम में योध्धाओं का उत्साह वर्धन करने के लिऐ प्रयोग होता था। मृदंग और पणव का गान के साथ भी प्रयोग होता था। मृदंग से आज भी लोग परिचित है और उसका प्रचार निरंतर चलता रहा है।

---

२५ भारतीय संगीत का इतीहास ठाकुर जयदेवसिंह पृष्ठ क्र १७२

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY

१-४ तबला उदगम एवं विकास :

तबला एक ऐसा वाद्य है जो अनुमानतः मध्ययुग से अर्थात इं.सन् १२६६ से बजता था इसका जन्म कब हुआ इस बारे में सभी कलाकार, इतिहासकार, विद्वानों में काफी मतमतांतर है। किन्तु यह बात सच है कि १२६६ में सुलतान जियाउद्दीन बल्बन के दरबार में कव्वाली की संगत करते समय दाँया,बाँया जैसे दो अलग भागों में बँटा हुआ वाद्य था इतना सही है की इस वाद्य पर स्याही नहीं होती थी। ऐसा उल्लेख करम इमाम ने अपने पर्शिअन लेख में लिखा है।[२६]

तबले का आविष्कार सूफी कवि अमीर खुसरो ने नहीं बल्कि खुसरो खाँ नामक अन्य व्यक्ति ने किया था।

आचार्य बृहस्पतिने अपनी पुस्तक खुसरो,तानसेन तथा अन्य कलाकार में एक खुसरो का वर्णन किया है जो गुजरात में स्थित परिवार नामक एक निम्न श्रेणी की संगीतजीवी जाती के थे। इन्हें सन १२९७ में गुजरात से कैद करके दिल्ली ले गये थे। बादमें उनको मुस्लिम बनाया गया और उन्होंने मुस्लिम धर्म अंगीकार किया और अपना नाम खुसरो रखा था। आगे चलकर इन्होंने

२६ तबला पुराण पं.विजयशंकर मिश्र पृष्ठ क्र ६

नसीरुद्दीन उपाधि ग्रहण करके दिल्ली पर चार महीने शासन भी किया था।[२७] ये संगीत से जुड़े हुए थे किंतु इन्हों ने तबले का आविष्कार किया इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता।

संगीत वाद्य के रुप में तबल और तब्ल शब्द का उल्लेख चौदहवीं शताब्दी से ही मिलना आरंभ होता है । जैन आचार्य सुधा कलश वज्राचार्य ने १३५० मे रचित अपने ग्रंथ "संगीतोप निषत् सारोध्दार" में ढोल, तबल, डफ, टामकी और डौडी नामक वाद्यों की चर्चा मुसलमानों द्वारा प्रयुक्त और पैदल चलने वाले वादको द्वारा बजाये जानेवाले वाद्य रुप में की है ।

" तथैव मलेच्छ वादयानि ढोल तबल मुखानी तु ।

डफाच टामकी चैव डउंदी पाद चारिणाम "।। श्लोक संख्या ९३

इसके बाद आसाम मे प्रसिध्ध वैष्णव संत माधव देव कांदली ने अपनी असमिया रामायण में ढोल,डौडी आदि के साथ तबला का उल्लेख इस प्रकार किया है।[२८]

" विर ढाक ढोल वाजिया तबल डगर डंडी डौडी सबद सुनिया "।

१५ वीं शताब्दी में सिखों के प्रथम गुरु नानकदेव ने अपने शबद कीर्तन मे तबले का उल्लेख किया है। "तबल बाज विचार सबद सुनाइयाँ "।

---

२७ तबला पुराण पं. विजयशंकर मिश्र पृष्ठ क्र ७
२८ तबला पुराण पं. विजयशंकर मिश्र पृष्ठ क्र ११

प्रसिध्ध सूफी कवि मलिक मोहम्मद् जायसी ने १५२१ में रचित अपने प्रसिध्ध महाकाव्य पद्मावत में तीन स्थानों पर तबल की चर्चा की है।

" हो सब कविन्ह केर पछिलगा। किछु कही चला तबल दई डग्गा।

बाजे तबल अकूल जुझाउ। चढ़ा कोपि सब राजा राउ।

और असूदल गजदल दूनौ सांजे। औ धन तबल जुझ कहं बाजै"।।[२९]

शास्त्रीय संगीत के तत्कालीन अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों में तबले की चर्चा नहीं मिलती। आईने अकबरी में भी नही है जिसमें ३६ संगीतकारों का उल्लेख है। अतः ऐसा ज्ञात होता है, इसी कालखंड में इससे प्रेरित हो कर संबल आदि वाद्यों का निर्माण हुआ हो। सुप्रसिध्ध संगीत शास्त्री ठाकुर जयदेवसिंह के अनुसार भी तबला प्राचीन लोक वाद्यका परिष्कृत और आधुनिक रुप है। इनके अनुसार तबला अपने अपरिष्कृत प्राचीन कालसे भारत में था। किंतु १८ वीं शताब्दी तक न तो आजकी तबला जोड़ी जैसा रुप प्राप्त हुआ था और नहीं वह अधिक प्रचार में था।[३०]

अमीर खुसरो ने पर्शियन बहर पर पर्शियन कविताओं की मात्रा और तत्कालीन भारतीय तालों पर आधारित ऐसे १५ ताल,ठेके निर्माण किये। इन तालोंकों अनेक ताल और उनकी शैली ऐसी दिखाई पड़ती है कि वे तबले के

२९ तबला पुराण पं. विजयशंकर मिश्र पृष्ठ क्र ११
३० तबला पुराण पं. विजयशंकर मिश्र पृष्ठ क्र १२

वादन पध्दति को साथ संगत के अनुकूल थे। उदाहरणार्थ पश्तो, झोबहार, कवाली, वासुले, फाक्ता, जत, जल्द, तितला, सवारी, आड़ाचौताल, झुमरा, झुनानीसवारी, दास्तान, खम्स फरदोश्त, कैद पहेलवान, पत, चपक ऐसे १५ तालों का उपयोग और उनकी खोज का श्रेय अमीर खुसरो को जाता है। इसका उल्लेख करम इमाम नें किया है।[३१]

भारत में मुसलमानों के आगमन के समय बारह, तेरह वर्ष पूर्व तबले का प्राचीन रूप यहाँ था। १६,१७ वीं सदी पूर्व अनेक गुफाओं ऐवं मन्दिरों के शिल्पों में तबले के सदृश्य अनेक वाद्य मिलते हैं जो छठवीं सदी के है, जबकि बायाँ उससे बिलकुल आधा है। इस शिल्प कृति का चित्र पुस्तक में दिया गया है यह छठी सदी और दोसों वर्ष की एक बौद्ध गुफामें इन्द्र शिल्प मिलता है। भाजा गुफा जो लोनावाला, महाराष्ट्र में स्थित है, यह शिल्प कृति आज भी देखने को मिलती है।[३२]

आज से लगभग ९०० वर्ष पूर्व गुजरात के सोलंकी वंश के चालुक्य नरेशकुमार पाल द्वारा निर्मित जैन श्वेतांबर देरासर की बाहरी दीवार पर उत्कीर्ण तबला वाद्य बजाती हुई स्त्री वादिका का शिल्प है, जो भारत की संस्कृति और प्राचीन परंपरा को समेटे हुऐ दृष्टिगोचर होता है। गुजरात राज्य

३१ तबला अरविंद मुळगावकर पृष्ठ क्र ५
३२ पखावज और तबला के घराने एवं परम्पराए डां अबान मिस्त्री पृष्ठ क्र १०९

के साबर काँठा जनपद के प्राचीन काल के इडर दुर्ग, इला दुर्ग नामोंसे प्रसिध्द इडर नगर आज भी अस्तित्व में है यह नगर पर्वतों से घिरा हुआ है। तत्कालीन राजा का किला आज भी खंण्डहर रुप में मौजूद है और इसी गढ़ पर मध्य भाग में भगवान शांतिनाथ के प्राचीन जैन श्वेताम्बर जैन देरासर है। उसीकी बाहरी दीवार पर आज जैसे तबला वाद्य का वादन करती हुई स्त्री वादिका की प्राचीन मूर्ति द्रष्टव्य है।[३३] उस मूर्ति में आज जैसी ही वादन शैली याने हाथों का रख रखाव एक समान है। आश्चर्य की बात यह है कि यह शिल्प २२०० साल से भी अधिक पुराना है। देरासर का इतिहास जानने के लिये अनेक पाण्डुलिपियों को देखकर इडर का इतिहास नामक पाण्डुलिपि हस्तगत हुई, जो गुजराती भाषा में थी। उक्त ऐतिहासिक पाण्डुलिपि में इडर राज्य के विक्रम संवत् पूर्व १२५ से लेकर विक्रम संवत १९६८ तक की सभी महत्वपूर्ण घटनाओं एवं राज्यकर्ताओं का विवरण दिया गया है। इससे यह ज्ञात होता है कि देरासर २२०० साल से भी अधिक पुराना है और यह देरासर भी कुमारपाल राजा ने ही बनवाया था, ऐसा उल्लेख उन्हीं के समय में हुए अन्तरगछीय श्री जिनपतिसुरी जी महाराज द्वारा रचित तीर्थमाला की पाण्डुलिपि में इस प्रकार मिलता है।" इडरगिरौनिविष्ठं चोलुक्याधिपकरिंत जिनं प्रथमम्

३३ कलाकुंज भारती पत्रिका संस्कार भारती आग्रा

"अर्थात् इडर गिरि पर चौलुक्य नरेश पाल राजा ने अपने बनवाए हुए देरासर में प्रथम जिनेश्वर को स्थापित किया। देरासर के शिल्प स्थापत्य का पत्थर १००० साल से भी ज्यादा पुराना है और शिल्प की शैली दसवीं ग्यारहवीं शताब्दियों की शिल्प स्थापत्य शैली से मिलती है ऐसा पुराण वास्तुविदो ने तय किया है। शोधार्थी का विनम्र मत से कहना है कि तबला वाद्य की उत्पत्ति अमीर खुसरो के द्वारा अथवा पखावज को काटकर नहीं हुई है, बल्कि यह भारत का ही एक उन्नत अवनध वाद्य है।[३४] फिर भी यह भ्रमपूर्ण मत आज भी प्रबल रुप से विद्यमान है कि तबले के अविष्कारक अमीर खुसरो है। जबकि खुसरो के जन्म से ३०० वर्ष पहले भी भारतवर्ष में तबला वाद्य का अस्तित्व था।

हजरत अमीर खुसरो का जन्म ई.सन १२५३ और निधन ई.सन् १३२५ में हुआ। तबला वाद्य का शिल्प जहाँ पर है, वह देरासर कुमार पाल राजा ने ई.सन् ११४४ से ११७४ के मध्य बनाया। खुसरो के जन्म का वर्ष और देरासर को बनाने की अवधि का गाणितिक पृथक्करण करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि खुसरो के जन्म से ९० या १०० साल पहले ये देरासर बना था। हजरत अमीर खुसरो का जन्म आज से ई.सन् १२५३ और

---

३४ पत्रिका डॉ गौरांग भावसार

निधन ई सन् १३२५ हुआ। तबला वाद्य का शिल्प जहां पर है वह कुमारपाल राजा नें ई. सन ११४४ से ११७४ के मध्य बनाया। खुसरो का जन्म और देरासर बना इसकी अवधि का पृथक्करण करे तो निष्कर्ष निकलता है की देरासर ९० या १०० वर्ष पहले हुआ था । और देरासर आज से ७५५ साल हुऐ। याने देरासर के शिल्प को देखते हुअे तबला वाद्य का पूर्व रूप जन्म भारत में ही हुआ था।[३५]

आज से १००० साल पहले तबले की वादन शैली कैसी रही होगी, यह कहना मुश्किल है। परंतु यह भी सच है कि संगीत रत्नाकर, अमरावती संस्करण के तीसरे खण्ड़ के पृष्ठ ३९४-९५ पर मुख्य सोलह वर्णो का उल्लेख करते हुऐ बताया गया है कि उन्हीं के आधार पर मुख्य चार वर्णो ता, दित्, थुं, ना का प्रचार हुआ और गजानन्दजी ने मृदुंग बजाने की पध्दतियों को पाश्र्वपाणि, अर्थपाणि, दण्डपाणि और कर्तरी नाम दिया। इन्हीं चार वर्णो के संयोग वियोग से मृदंग वादन हेतु अन्य बोलों का प्रयोग उस समय तबला वादन में भी होता होगा । यह एक विचारणीय विषय है। लेकिन मूर्ति में स्पष्टतः आज के जैसी ही हाथों की स्थिति एवं बन्द बाज की वादन शैली दृष्टिगोचर होती है।[३६]

३५ तबलानो इतिहास डॉ गौरांग भावसार पृष्ठ क्र १३
३६ तबलानो इतिहास डॉ गौरांग भावसार पृष्ठ क्र १४

कई तबला वादक तबले का जन्म स्थल पंजाब मानते है। इनका कहना है कि तबले का जन्म पखावज के आधार पर हुआ है। आजभी पंजाब में बाँये पर आटा लगाते है; तो क्या तबले का जन्म पंजाब में हुआ? इस पर गोर करना भी जरुरी है।

एक दंत कथा प्रचलित है या वास्तविकता, दहेज नाम से प्रचलित गतें तबले पर बजती हैं। मोंदूखाँ साहब को दहेज में ५०० गतें मिली थी और वही गतें उन्होंने अपने दामाद हाजी साहब को दहेज में दी।[३७] एक बात सत्य है हमारे यहाँ ऐसी परम्परा है जब लडकी का ब्याह होता है तब लडकी के पिता को दहेज में पैसे,जवाहरात,भेंट सौगाद इत्यादि देना ही होता है और यह परम्परा पुरातन कालसे चली आयी है। जबकि पिता द्वारा दी गयी सौगात चुनी हुई ही होंगी। हम दहेज की गत का विचार करें तो उस समय दहेज में ५०० गतें वो भी चुन,चुन कर दी गयी होंगी। उस समय कितनी गतों होंगी उसका अंदाज हम नहीं लगा पाते और इन सारी गतें को बनाने के लिये कितना समय लगा होगा इसका कोई अंदाज नहीं हैं, इस पर हम गौर करें तो निश्चित ही यह सत्य प्रतीत है और इससे महेसूस होता है कि तबला वाद्य अति पुराना है।[३८]

---

३७ साक्षात्कार प्रो पुष्करराज श्रीधर बडौदा
३८ साक्षात्कार प्रो पुष्करराज श्रीधर बडौदा

शोधार्थी का कहान यह है की इतिहासकार, तबला विद्य के विद्वान, उस्ताद, पंडित या सीखा हुआ विद्यार्थी उन सभी के मनमें एक बात निश्चित है कि तबले के जन्म के बारे में मतमतांतर हैं। परंतु इतना सच है कि समस्त सृष्टि में जिस प्रकार से परिवर्तन हुआ उसी प्रकार संगीत में भी परिवर्तन हुआ और जब तबले का आविष्कार या जन्म हुआ उसके बाद तबला वाद्य संगीत,नृत्य,वादन में एक महत्वपूर्ण अंग बन गया अर्थात इसके बिना संगीत वादय,नृत्य अपूर्ण है। तबले का जन्म कहीं भी हुआ हों, या किसीने भी इसका अविष्कार किया हो यह निर्विवाद सत्य है कि वह अभिनंदन का पात्र है और उत्तरोत्तर इसमें प्रगति हुई है।

शोधार्थी के दृष्टिसे और पुस्तकों का चयन करने के बाद शोधार्थी यह कह सकता है कि तबले का आविष्कार और उसमें क्रियात्मक वैभव, याने इसी क्षेत्र में परिवर्तन का एक बड़ा सा झोंका आने से इसकी शैलीमें काफ़ी सुधार होता गया। इसी कारण वश तबला आधुनिक युग का सर्वाधिक, प्रतिष्ठित, प्रचलित और लोकप्रिय वाद्य है।

जब धृपद धमार जैसी गायकी की जगह आज के ख्याल संगीत ने जगह बना ली याने उसमें परिवर्तन हुआ क्योंकि जो शास्त्रीय संगीत हम कहते हैं उसमें अधिकाँशतः गीत श्रृंगारिक और गाने में आसान होते है। इसका श्रेय

जादातर सदारंग,अदारंग नामक दो गायकों को जाता है। दोनो मुस्लिम गायक थे और उस समय मुस्लिम शासकों का शासन था और राजाश्रय होने के कारण किसी एक का मनोरंजन करना और वह भी उनका की जिनसे सिर्फ वाह वाह मिले। गाने में अति सहजता पूर्वक गा सके ऐसी चीजों को स्थायी और अंतरा ऐसे दो भागो में विभाजित किया गया, उसमें चंचलता अधिक होने के कारण जो पहले धृपद गायकी में संगत के लिये पखावज का उपयोग होता था, और वो धीर गंभीर गायन या। किन्तु शास्त्रीय संगीत में चंचलता एवं गतिशीलता का अधिक चलन होने के कारण पखावज जैसा धीर गंभीर वाद्य संगत के लिये नहीं चल सका तभी उसकी जगह तबले ने ली इस गायन में एक और वाद्य का उपयोग होने लगा और इसकी संगत अति सरल हो गयी। उसे मान्यता भी मिल गयी इसीलिये उपयोग निरंतर आज भी हो रहा है।

कई विद्वानो के मतानुसार तबले का जन्म दिल्ली नहीं परंतु पंजाब था। इसमें शोधार्थी के मतानुसार उस समय याने भारतीय परंपरानुसार प्राचीन काल में हिन्दुस्तान की सीमा हिन्दुकुश पर्वत उसमें ईरान, ईराक, अफगानीस्तान याने गंधार यह पूरा प्रदेश हिन्दुस्तान में आता था। मुस्लिम शासकों के आक्रमक स्वभाव से सम्पूर्ण प्रदेश मुस्लिम शासित हो गया। और

आगे जा कर पूरे हिन्दूस्तान पर उनका शासन चलने लगा। उस समय की भारत की भौगोलिक स्थिति देखी जाय, तो पंजाब प्रांत दिल्ली में ही आता था, अलग नहीं था। याने पंजाब और दिल्ली एक ही प्रदेश में थे।

कई विद्वानों के मतानुसार सिध्धार खाँ दाढ़ी तबले के जन्मदाता थे। उनका निवास स्थान उस जमाने में पंजाब होगा तो उसे हम दिल्ली कह सकते हैं। यह बात सत्य है कि संगीत को राजाश्र प्राप्त होने के कारण इसका अधिक प्रभाव दिल्ली में ही था अर्थात अमीर खुसरो,जैसे कई और महान गायक दिल्ली में बसे थे। इससे स्पष्ट होता कि संगीत का माहोल दिल्ली में था। और राजधानी होने के कारण राजाश्रय मिलता था। यह निर्विवाद सत्य हैं जब भी किसी विधा को चाहे राजनीति,कला,संदीत,धर्म आदि होंतो राजाश्रय मीलने पर उसकी तरक्की निश्चित है। इस हिसाब से तबले में उत्तरोत्तर प्रगति होने लगी और इसी कारण तबले का काफ़ी विकास हुआ।

हमारे देश पर यवनों का आक्रमण हुआ और विजय उन लोगोंका हुआ तो शासन उनका ही था। ईरानी खलीफा के आक्रमण करने के बाद बादशाह बहेरामन गौर ने १२०० भारतीय कलाकार याने संगीतज्ञों को ईरान बुलाकर नौकरी पर रखा था। और इनमें से कई कलाकार लय-वाद्य वादक थे। इन

कलाकारों में कई चर्म वादक भी थे। जिस वाद्य को हमारे यहाँ निम्न कक्षा का समझा जाता था उसे ही उन्होंने प्रदर्शित किया और उसे उपयोग में लिया याने तबला वाद्य वहाँ अधिकतर बजाया जाते।[३९]

इतिहास साक्षी है कि मुस्लिम शासकों ने भारतीय प्रजा पर सभी प्रकार के अत्याचार किए जैसे धर्मांतर, अपनी पाठशाला, मंदिरों ग्रंथालयों इनका नाश करने में कोइ कमी नहीं कीं, साथो साथ धर्मांतरण का कार्य भी बहुत तेजी से किया। धर्मांतरण से जो भी लोग मुसलमान बन गये उनमें कई लोग कलाकार भी थे। जिनकें वापिस धर्मपरिवर्तन न करने से और हिन्दू धर्म में वापिस न लेने से उनको न तो पक्के मुसलमान गिनते और न तो हिंदू। इसलिये उन्होने संगीत को ऐसा मोड़ दिया जिसको हम निम्न कक्षा का मानते थे। उसी को उन्होने स्वीकार करके, उसमें ज्यादा मेहनत करके उसमें नयी जान डाली। इस से यह बात तय होती है कि तबला भारतीय होने के कारण दुसरे देशों में जा कर वापिस हिंदुस्तान में आ कर उसका उपयोग होने लगा।

कँप्टन विलर्ड जो एक विदेशी इतिहासकार थे। उन्होंने अपनी पुस्तक A tritais on the Music of Hindustan जो १८१४ में लिखा उसमें पृष्ठ क्र. १०६ में

---

३९ तबला पुराण पं विजयशंकर मिश्र पृष्ठ क्र १४

लिखा है की जब हिंदुस्तान पर मुस्लिम शासकों के आक्रमण प्रारंभ हुए तभी से यहाँ के संगीत के इतिहास का एक महत्वपूर्ण काल आरंभ हुआ। इसी समय से शुध्ध रुप से हिन्दू कहलाने वाली कलाओं का पतन का प्रारंभ हुआ। इस काल में संगीतशास्त्र की प्रगति रुक गयी एवं शीघ्रतासे पतन होने लगा।[४०]

भातखंडेजी ने कहाँ है कि मुस्लिम शासको के आने से संगीत पतोन्मुख हो गया और हम उत्तरभारतीयों ने संगीत विज्ञान के सभी प्राचीन ग्रंथो को खो दिया है।[४१]

---

४० भारतीय तालोंका शास्त्रीय विवेचन डॉ अरुण कुमार सेन पृष्ठ क्र २०
४१ भारतीय तालोंका शास्त्रीय विवेचन डॉ अरुण कुमार सेन पृष्ठ क्र २१

१-५ घराना घराने का जन्म :

भारतीय संगीत में घराने कबसे प्रारंभ हुए इसका उत्तर देना कठिन है। आधुनिक युग की पुस्तकों में घरानों की परंपरा तीनसो सालसे अधिक पुरानी नहीं बताई गयी है। मध्य युग में ध्रुपद गायकी के चार घरानों का वर्णन मिलता है। भरत मत, शिव मत, हनुमंत मत, नारद मत, मत याने वाणी के नाम से संबोधित किये जाते थे। प्राचीन कालसे ही व्यक्ति पूजा मनुष्य मात्र का स्वभाव रहा है। जैसे वैदिक कालमें ऋषिमुनि, रामायण में श्रीराम उसके बाद राजाओं के प्रति आदर सन्मान और मुस्लिम शासको के युग में बादशाह की कदमपोशी ये स्पष्ट उदाहरण हैं। मध्य युग में उस समय गोहर बानी, जोहर बानी, डागुरबानी, नौहर वाणी ऐसी चार बानी ध्रुपद धमार में प्रचलित थी। यहाँ से घराने की नींव पड़ी होगी और पीढी दर पीढ़ी चली आ रही है।[४२]

पं विष्णू नारायण भातखंडे अपने संगीत शास्त्र में लिखते है कि संगीत में घराने का उल्लेख हकीम करम ईमाम की पुस्तक मदन-उल-मुसिकी में मिलता है जो १८५५ के आसपास लिखी गयी थी।

४२ तबला पुराण पं विजयशंकर मिश्र पृष्ठ क्र ३०६

संस्कृत में एक वाक्य प्रसिध्द है।

: वंशो द्विविधा जन्मना विद्याच :[४३]

याने वंश या कुल दो प्रकार से चलते है। एक जन्म से दूसरा विद्या से। एक घर में जन्म लेनेवाला सभी व्यक्तियों का परिवार या घराना होता है। वैसे ही ऐक गुरु से विद्या पानेवाले सभी शिष्यों का एक परिवार याने घराना।

डॉ ना.र. मारुलकर घराने की परिभाषा देते हुऐ कहते है "अेख्यादया युगपुरुषाच्या असामान्य कर्तबगारी ने सूरु झालेली थोर आचार-विचार परंपरा म्हणजे घराणे "[४४]

घराने के संदर्भ में आचार्य बृहस्पति ने अपनी पुस्तक खुसरो-तानसेन तथा अन्य कलाकार में गुजरात की परिवार नामक एक संगीत व्यवसायी जाति का उल्लेख किया है। तेरहवीं, चौदवीं शताब्दी में गुजरात में सक्रिय ये जाति सामाजिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से कम स्तर की मानी जाती थी। इस जाति के पुरुष तो गायन, वादन में निपुण होते थे, महिलायें भी संगीत, नृत्य में निपुण होती थीं।[४५]

---

४३ तबला पुराण पं विजयशंकर मिश्र पृष्ठ क्र ३०६
४४ पखावज और तबला के घराने एवं परम्पराए डॉ अबान मिस्त्री पृष्ठ क्र ११०
४५ तबला पुराण पं विजयशंकर मिश्र पृष्ठ क्र ३०७

संगीत शिक्षा परंपरा प्रयुक्त संप्रदाय, परिवार और घराना शब्द पूरी तरह तो नहीं तो समानार्थी तो है। परिवार का अर्थ है एक दूसरे के रक्त से संबधित लोंगोंका समुह याने घराना शब्द परिवार के फारसी और उर्दू पर्याय है। मुगल काल के पूर्व भारत में पेशेवर संगीत प्रेमी, जातियों में खानदान और घराना अर्थ में परिवार शब्द प्रचलित था।

घराना शब्द की व्युत्पत्ति घर से हुई है। घर शब्द मूलतः संस्कृत के गृह शब्द से अपभ्रंश हो कर बना है। घराना शब्द पेशेवर गायकों, वादकों, नर्तकों की वंश परंपरा का सूचक है। ध्रुवपद गायकी में घराने का अर्थ वाणी शब्द प्रयोग होता है।[४६]

शोधार्थी के विनम्र मतानुसार सभी महानुभावों के विचारों पर गौर करने के बाद एक तथ्य तो स्पष्ट है कि प्राचीन कालसे गुरु-शिष्य परंपरा चली आ रही है। कोई भी व्यक्ति किसी भी विषय में असामान्य कला का प्रार्दुभाव दिखाकर और उसके बल पर कोई प्रस्तुति समाज के सामने रखता है और समाज उसे स्वीकृति देता है तब वही इन्सान गुरु बनने के लायक होता है। हमारी ६४ कलाओं में कई विद्वान कला गुरु हो गये सभी अपनी अपनी कला में निपुण थे। किंतु एक विषय ऐसा हो कि जिसमें नया आविष्कार आदर्श

---

४६ तबला पुराण पं विजय शंकर मिश्र पृष्ठ क ३०८

शैली स्वरुप किया हो और उसे सामाजिक दृष्टिसे मान्यता मिली हो वही विद्या अपने विद्यार्थियों को सिखाये और शिष्य उसे आत्मसात करें वहीं से घरानेकी शुरुआत होती है।

संगीत सीखते हुऐ छोटे विद्यार्थी को जब हम घराने के बारे में समझाते है तब घराने का प्रारंभिक मतलब यह समझाते है कि घराना याने घर आना और विद्यार्जन करना । एक तरह से यह एक गुरु-शिष्य परंपरा बनती है।

घराना कैसे बनता है यह काफी विद्वान लेखकों के अभिप्राय सुनने,पढ़ने के बाद शोधार्थी के विनम्र मत से ऐसा भी देखा जा सकता है कि हिन्दुस्तानी संगीत में जो भी कलाकार चाहे वो गायक,वादक या नृत्यकार हो जिन कलाकारो ने इस क्षेत्र में कुछ आविष्कार करने के बाद अपना बढ़प्पन न दिखाकर याने खुदका नाम आगे न बढ़ाकर अपने गाँव या राज्य का नाम रोशन किया। तबले के घरानों के बारे में हम सोचे तो सिध्धार खाँ दाढ़ी जिन्होंने तबले की नीव डाली और तबले का आविष्कार किया तो उन्होंने खुदका नाम उससे न जोडकर पूरे राज्य का यानी दिल्ली का नाम जोड पूरे राज्य को महानता दिलाई। उसी तरह अजराड़ा यह तो एक छोटा देहाती गाँव जो मेरठ के पास है। उसी गाव के उस्तादोंने पूरे राष्ट्र

में उस गाँव की महता बढ़ा दी। पंजाब, लखनौ, फरुखाबाद, बनारस ऐसे ६ मुख्य घरानों का जन्म हुआ और सभी अपने इलाके से प्रसिद्ध हुए।

क्या घराना बनने के बाद संगीत, वादन, नृत्य में कोई फेर हुआ? एक बात निश्चित है। यदि हम सिर्फ यह बात तबले के घरानों तक सीमित रखें तो इसमें काफी सुधार हुआ है। हरेक घराने की वादन शैली कुछ भिन्न बनी और बजाने की क्षमता भी बढ़ी क्यों कि हरेक कलाकार अपनी विशिष्ट बुध्दि का योगदान विज्ञान की तरह वैज्ञानिक पद्धति से देने लगा। उदाहरणार्थ अजराडा बाज वाले हरेक बोल के लिये अलग उंगलीका उपयोग करने लगे और बायें पर वजन देकर नया बाज बनाया तबले में गणित का हिसाब लगाकर, आड़ में बजाने लगे, और वादन शैली आड़ लय की बनायी, उसी तरह दिल्ली बाज दो उगलियों का बाज बना। पंजाब खुला बाज बजाने लगे याने पखावज चलन का सीधा असर उसपर दिखाइ देता है। फरुखाबाद, लखनऊ ने नृत्य का साथ घनिष्ठ संबंध होने के कारण अपना बाज अलगसा बन गया। बनारस बाज नें खुले बोलोंको अपनाया। याने हरेक घराने अपने, अपने ढंग से उत्तरोत्तर प्रगति करके उसमें विशिष्ठता पायी और आज भी हम उसका अनुकरण और पालन करते हैं। परंपरा के हिसाबसे इसमें बदलाव और नया मोड़ बन पाता है।

क्या घराने बननेसे आम लोगो को कोई फायदा हुआ ?

इस बारे में काफी मतमतांतर हैं। कई विद्वानो का कहना है कि घराने बननेसे कई अच्छे कलाकारों का नुकसान हुआ उनको कुछ सिखाया नहीं गया। उस्ताद की इच्छा हो तो ही उनको सिखाया जाता था। यह भी शिक्षा किस तरह से उनको मिलती थी यह वही लोग जानें। जिनपर ईश्वरी कृपादृष्टि हो वो ही सीख पाते थे दूसरों को तो शिक्षा मिलना असंभव होता था मन की मुराद मन में रहजाती थी। ऐसा क्यों? मुगल काल में प्रायः सभी विद्यालय बंद हो गये और संगीत की वे विधायें जिनकों मुक्त हस्तसे विशिष्ट़ता पूर्वक प्रदान करने की प्रथा थी। वह उस्तादों की मुठ्ठियों में कैद होकर रह गयी। अब वे अपनी इच्छासे अपनी शर्तो पर सिखाते। संगीत शिक्षा ३ श्रेणीयो में विभाजित हुआ।[४७]

१ खासुल खास शिक्षा की विशिष्ट श्रेणी जिसके अंतर्गत पुत्र,दामाद जैसे, आत्मीय ही शिक्षा के अधिकारी माने जाते थे।

२ दूसरी शिक्षा तालीमें मे खास कहलाती थी इस में परिवारिक सदस्य याने सामान्य से अधिक शुल्क देने वालें शिष्य आते थे।

३ तीसरी तालीम सामान्य लोगों के लिये।[४८]

---

४७ तबला पुराण पं विजय शंकर मिश्र पृष्ठ क ३०५
४८ तबला पुराण पं विजय शंकर मिश्र पृष्ठ क ३०७

शोधार्थी के विनम्र मतानुसार निष्कर्ष निकलता है कि उस जमाने में मुस्लिम शासकों का राज चलता था और काफी कलाकारों को राजाश्रय मिलता था। प्रायः कलाकार अधिक पढ़े लिखे नही होते थे इसका सीधा असर व्यवहार पर हुआ। इस के लिये मन संकुचित होने के कारण सिखाना तो दूर रहा किंतु बिन मुस्लिमों को फटकने भी नहीं देते थे और यदि कुछ भी शायद सिखाया तो वह ऐसा सिखाते कि विद्यार्थी जिंदगी भर घिसता रहे तो भी उसे कुछ प्राप्त नही होता था। हमने कई पुस्तकों में पढ़ा है कि पं भातखंडेजी ने संगीत जगत में कितना प्रवास कर संगीत के लिये क्या कुछ नहीं किया। इसके लिये उनको कितने कष्ट उठाने पड़े और क्या क्या करना पड़ा होगा, कितनीबार अपमानजनक स्थिति में उन्हों ने डट कर पीछे न हटते हुए कुछ प्राप्त किया। ऐसे तो कई बिन मुस्लिम कलाकारोंने भी संगीत के लिये काम किया। इससे पता चलता है कि घरानेदार संगीत सीखना कितना कष्ट दायक था। इतनाहीं नहीं कोई कलाकार अलग घराने का हो और उसे यदि दूसरे घराने का तबला सीखना हो तो सीखना तो दूर की बात है, उसके सामने वो बजाते भी नही थे क्योंकि डर होता था कि उनका तबला कोई चोरी छुपे सीख न जाय। और याद न कर ले। ऐसी स्थिति में तबले की जो तरक्की होनी चाहिये, उतनी नहीं हुई। किंतु कालांतर से जैसे जैसे

राजाश्रय मिलना बंद हुआ तब परिस्थिती ने करवट बदली। जितनी परेशानी पहले होती थी उससे कम होने लगी और तबला सीखना कुछ आसान हो गया। एक बात तो निश्चित है कि जो भी कलाकार जिस घराने का तबला सीखता है उसी घराने के अतंर्गत ही उसी घराने को आगे चलाता है।

१-६ दिल्ली एक पहचान :

हिंदूस्तान, भारत, इंडिया कालांतर से एक ही देश की परिस्थिति अनुसार बदलते रखे हुए नाम। क्यों ऐसा?

वेद, उपनिषद, पुराण यहाँ लिखे गये, हम कह सकते हैं की हमारी संस्कृति कितनी पुरानी है और आर्य सनातन वैदिक हिन्दू धर्म की धरोहर तो इस देश की पहचान है। ऋषि, मुनियोंका देश संतों का देश जिन्होंने पुराण लिखे और अठारह पुराण किसने लिखे वे कहां लिखे गये यह एक प्रश्न मन में आता है। किंतु उस समय देश की भौगोलिक स्थिति ऐसी थी कि उसे हम अरण्य कहते थे। जैसे नैमीषारण्य, दंडकारण्य सभी पुराण नैमीषारण्य में लिखे गये याने आजके हमारे दिल्ली, हिमाचल प्रदेश यानी उत्तरी भाग कहेंगे। यहाँ रामायण, महाभारत का काल भी इसी प्रदेश में हुआ। महाभारत में कौरव, पांडवो की राजधानी हस्तिनापुर थी। यहाँ ही महाभारत हुआ और सत्य की असत्य पर विजय हुई वह कुरुक्षेत्र में हुआ।

एक बात पर गौर करने जैसी बात है कि पाँडवोने कौरवो के पास पाँच गाँव माँगे थे वे इन्द्रपत, बागपत, तिलपत, सोनपत, पानीपत थे। संस्कृत में पत को प्रस्थ कहते हैं और आज भी इसी नामके गाँव दिल्ली मे अस्तित्व में है जो महाभारत काल से चले आ रहे है।[४९]

---

४९ दिल्ली अॅन्ड इटस् नेबरहुड

महाभारत में गीत, नृत्य का उल्लेख मिलता है। हरिवंश महाभारत के अंग स्वरुप अठराह पर्वो के बाद तीन अतिरिक्त पर्वो में है। हरिवंश महाभारत में ताल एवं लय का जो उल्लेख उपलब्ध है उनमें महाभारत से अधिक स्पष्टता है। इसमें नृत्य, वाद्य, गीत संगीत शब्द का उपयोग किया है।[५०]

मौर्य एवं बौध्ध कालीन : गौतमबुध्ध जब राजकुमार थे तब राजा शुध्दोधन ने मनोरंजन हेतु सहस्त्रों वाद्य यंत्रोका संग्रह किया था। जिनमें एक हजार छोटे छोटे मृदंग थे। बौध्ध साहित्य में उल्लेख है कि वाराणसी में विश्व विद्यालय था और उसके साथ अनेक संगीत विद्यालय संलग्न थे। नालन्दा, विक्रमाशिला, औदन्यपुरी में लय वाद्योंकी नियमित शिक्षा दि जाती थी।[५१]

गुप्त काल इं.सा ३२०-६०० तक

इस काल में भारतीय संस्कृति, साहित्य, शिल्प, संगीत इन सभी में उन्नति हुई।

मौर्य काल में मगध, मालवा आदिका ग्रीस, रोम इनके साथ मित्रता पूर्व संबध हो गया था और आदान प्रदान का प्रयोग प्रारंभ हो चुका था। चंद्र गुप्त, समुद्र गुप्त संगीत कला के पोषक थे। मृदुंग, मुरज आदि चर्म वाद्योंका लय हेतु प्रचार था और तालिका उल्लेख संगीत रत्नाकर में दिया हुआ है।

---

५० भारतीय तालोका शास्त्रीय विवेचन डॉ अरुण कुमार सेन पृष्ठ क्र १०
५१ भारतीय तालोका शास्त्रीय विवेचन डॉ अरुण कुमार सेन पृष्ठ क्र १४

और अष्टम अध्याय में ताल चर्चरी का उल्लेख है। स्त्रियां भी मृदुंग वाद्य में प्रवीण थी। मृदंग को शुद्रक ने अपने मृच्छकटिका नाटक में प्रणव शब्द का प्रयोग किया है।[५२]

मौर्य युग के चक्रवर्ती राजा अशोक २७३-३६ जिनका उल्लेख शिलालेख द्वारा श्रीनीवास पुरी में मिला कुतुबमीनार के पास जो लोहस्थंभ है वह गुप्त युग की देन है।

हर्षवर्धन युग का संगीत ६०६ से ६४७ तक माना जाता है वे स्वयं संगीत प्रेमी थे ये खुद संगीत जानते थे और रियाजी थे साथ शांतिप्रिय थे और शांती मुलक रचनाओं के प्रेमी थे।

राजपुत काल : इं. स ६४७ से १००० तक

इस समय भारत छोटे, छोटे तुकडों विभाजित हो चुका था। मौर्य कालसे लेकर हर्षवर्धन कालतक जो संगीत की परंपरा रही थी वह इस काल में नहीं रही। तात्कालीन संगीत में वर्गवाद का प्रादुर्भाव हुआ और सार्वभौमिकता नष्ट हो गयी, वर्णीय प्रशासक की रुचि एवं इच्छा, अनिच्छा के अनुरूप संगीत का विकास और प्रचार होने लगा।[५३]

---

५२ भारतीय तालोका शास्त्रीय विवेचन डॉ अरुण कुमार सेन पृष्ठ क्र १६
५३ भारतीय तालोका शास्त्रीय विवेचन डॉ अरुण कुमार सेन पृष्ठ क्र १७

हिन्दुस्थान में बहार के राजाओं का शासन :

गियासुददीन बल्बन	1266 -1286	
कैका़ बाद	1286 -1290	इन सभी सुल्तानो के यहा
जलालउददीन	1290- 1296	यामिनउददीन महंमद यासीन उर्फ
अल्लाउददीन खिलजी	1296 -1316	अमीर खुसरो यह विद्वान कलावंत
कुत्बुददीन मुबारक शाह	1316 – 1320	ने इन्हीं ६ सुल्तानो के यहा
गियास उददीन तघ्लुक	1320 -1326	नोकरी की थी ।[५४]

इतने शासक हिंदुस्थान आये और चले गये। किंतु बाबर नामक मुस्लिम शासक आया जो 1526-30 इसके बाद यहा से मुस्लिम शासन निरंतर चला और उस समय भी उनकी राजधानी दिल्ली ही थी। दिल्ली का नाम पहले दहेलीज होता था। इसका अर्थ होता है चौखट, आधार, दरगाह, अधोकाष्ट, चतुकाष्ट ये सभी अर्थ समान्तर कोष में बतलाये है।[५५] बाबर के बाद शेरशाह सुरी 1540-55इसके बाद हुमायु १५३०–१५५४ अकबर 1556-1605 सके सगीत के विषयों में सोचा गया और महत्व दिया गया वो अभीतक हो गये सुलतानो,राजाओने कभी दिया नही था। और एक बात निश्चित है कि संगीत को राजाश्रय सही तरीकेसे अकबर के राज्य में मिला इनके दरबार में नवरत्नो में तन्ना मिश्रा याने तानसेन जैसे राजगायक थे। इसी समय

५४ दिल्ली अँन्ड इटस् नेबरहुड
५५ अ-प्रकाशित शोध प्रबंध डॉ अजय अष्टपुत्रे वडोदरा

हरिदासजी, बैजुबावरा, तना रीरी दो सगी बहेनें इनके जैसे दिग्गज गायक होने के कारण उस समय संगीत के परंपरागत घरानों को महत्व मिला अकबर के राजकाल में संगीत का सुवर्ण काल माना जाता है।[५६]

इनके बाद जहांगीर १६०५-१६२७ इसके बाद शहाजहाँ १६२८-१६५८ औरंगजेब १६५८-१७०७ इनके शासन में संगीत था या नहीं यह एक ऐतिहासिक बात हुई। क्योंकि औरंगजेब यह एक जूनुनी राजा होने कारण उसके राज में कला को जरा भी महत्व नही था। ऐसा कई विद्वानों का कहना है। और यह तो सत्य है कि इस समय औरंगजेब का पूर्ण समय युध्ध में ही गया। शोधार्थी का कहना यह है की संगीत को जो राजाश्रय इसके पहले मिलता था वह इसकाल में मिलना बंद हो गया और संगीत आम लोगों में आया इसका एक कारण ऐसा भी है कि इनके शासन में संगीत पर पुरी पाबंदी थी। और राज्य की और से धर्मांतरण पूरे जोरशोर से चल रहा था प्रजापर अत्याचार बढ़ गया था. इसके कारण संत समाज नें जो संगीत मंदीरो तक सिमित था, उसे आम जनता तक लाने का प्रयत्न किया और वो सफल हुऐ और संगीत आम लोगो तक पहुँचा याने घर घर पहुँचा।

---

५६ भारतीय तालोका शास्त्रीय विवेचन डॉ अरुण कुमार सेन पृष्ठ क्र १८

तबले के घराने के बारे में सोचे तो १७०० साल में ही दिल्ली घराने की नींव डाली गयी। शोधार्थी कि दृष्टिसे औरंगझेब का समय संगीत का सुवर्ण काल कह सकते है। क्योंकि राजाश्रय से मुक्त हो कर आम लोंगो को संगीत सुनने मीलने लगा। इसी समय धार्मिक आक्रमण अधिक होने के कारण सभी संत समाज ने लोंगो में भक्ति निर्माण करने के लिये संगीत में भजन,पद लिखे और इसका चलन आम लोंगो में प्रसारित किया। इसके बाद कई मुस्लिम राजा हुऐ। सन१७५७-१८५७ में अंग्रेजों का शासन आया इनकी राजधानी पहले कलकत्ता थी बाद में उसे बदलकर दिल्ली रखी। उनके शासन में संगीत पुरी तरह से आम जनता में प्रवेश कर चुका था।

१-६ दिल्ली घरानेका उदगम एवं परिचय :

तबला वादन के क्षेत्र में आज जो ६ घराने पाये जाते हैं उनमें दिल्ली घराना सबसे प्राचीन एवं आद्य घराना माना गया है। अर्थात दूसरे शब्दो में कहा जाये तो यह मातृ संस्था है।[५७] विभिन्न लेखकों के कथन के अनुसार इसकी पुष्टि होती है और आज विभिन्न घरानो के तबला वादक उपलब्ध है वे भी ऊपर दिये हुऐ कथन से सहमत ह। इस घराने की शुरुआत के बारे में प्रत्येक लेखक ने अपने अपने विचार अपनी पुस्तकों में दिये हैं। लेकिन अधिकतर लेखकों के मतानुसार इस घराने का जन्म १७१० ई. में हुआ ऐसा माना गया है।[५८] निश्चित रुप से पं.अरविन्द मुलगांवकरजी के पुस्तक में तबले के जन्म के बारे में अलग अलग मतमतांतर पाये गये है। लेकिन इनके पुस्तक के अनुसार दिल्ली घराने का जन्म १७१० से लेकर १७२५ तक का माना गया है। इस घराने की नीव उस्ताद सिध्धार खां दाढ़ी ने रखी इसकी पुष्टि सभी पुस्तकों में की गयी है। दाढ़ी यह एक प्रकार की कौम है प्रायः सभी लोग संगीत प्रेमी थे। राजस्थान की सीमा पर उनका निवास था। और सिध्धार खां दाढी इसी कौम से आते थे। इन्होनें घराने की शुरुआत की यह

---

५७ साक्षात्कार प्रो सुधीरकुमार सक्सेनाजी
५८ अ-प्रकाशित शोध ग्रंथ डॉ अजय अष्टपुत्रे वडोदरा

कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी। इससे पूर्व तबला था क्योकि मध्यकालीन युग में तबला बजाया जाता था। लेकिन केवल संगत के लिए, शोधार्थी का एसा अनुमान है कि स्वतंत्र तबला वादन की विधिवत वादन पध्दति निश्चित रुपसे इसी घराने से हुई है। पिछले इतिहास को देखते हुए यह बात स्पष्ट रुप से दिखाई देती है कि इस घराने के पूर्व किसी भी प्रकार का तबले का घराना नहीं था न किसीने घराना बनाने की नींव डाली थी। इसी कारण दिल्ली घराने की शुरुआत उस्ताद सिध्धार खाँ से ही हुई यह कहने में अतिशयोक्ति नही होगी।

इस घराने का बाज बंद बाज कहलाता है और आज भी उसी को अपनाया गया है। इस घराने की वादन शैलौ में पखावज के बंद बोल जो प्रतीत है उस बोल को इस में समाविष्ट किये। इसीलिये इसे बंद बाज में समाविष्ट किया है परंपरानुसार पुराने उस्तादों के कुछ शिष्य एवं पुत्रों ने इस घराने को जीवित रखने के लिये अपना अमूल्य योगदान दिया है। फलतः आज भी यह घराना है। याने आज भी इसी घराने के कलाकार दिखाई एवं सुनाई देते हैं। दिल्ली घराने के बारे में विभिन्न विद्वानों के मतानुसार, अनेक मत पाये जाते है। जो टिप्पणी के रुप में दिये गये है।[५९]

५९ तबला पुराण पं विजयशंकर मिश्र पृष्ठ क्र १५

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
M. S. University of Baroda

यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि दिल्ली घराना और बाज अन्य सभी घरानो का जनक है। दिल्ली घराने के शिष्य देश के विभिन्न नगरों में गये और स्थाई रूप से बस गये। इन लोगोने अपने वादन में निपुणता प्राप्त की। इस घराने के मूल पुरुष ढाढ़ी कौम में जन्मे उस्ताद सिध्धार खा ढाढ़ी थे और मुख्य प्रर्वतक थे। इनका जन्म कहाँ हुआ यह कहेना कठिन है। संभवतः १७00 ई.स्वी के आसपास हुआ ऐसा मान जाता है।

इनके साथ शोधानुसार उस समय खब्बेहुसैन ढोलकिया, नियामत खाँ, सदरंग, खुसरो खाँ, पखवाजी भवानीसिंह आदि प्रसिध्ध कलाकार थे। सिध्धार खाँ ने युग की बदलती हुई रुचि का अध्ययन किया और पखावज के आधारपर एसा कलेवर तबले को दिया। उंगलियों के रख रखाव में परिवर्तन किया और चांटी प्रधान कुछ रचनाये बनाकर एक क्रांतिकारी कदम उठाया।[६०]

अपनी मधुरता और कर्णप्रियता के कारण दिल्ली की वादन शैली शेष घरानों से बिलकुल भिन्न है। इसमें मुख्यतः तर्जनी, मध्यमा, अनामिका उंगलियों का प्रयोग होता है। तिट और तिरकिट जैसे बोलों में मात्र दो उंगलियों का प्रयोग करते हैं।[६१]

---

६० पखावज और तबला के घराने एवं परम्पराए डॉ अबान मिस्त्री पृष्ठ क्र १२२
६१ तबला पुराण पं विजयशंकर मिश्र पृष्ठ क्र ६

इसे दो उंगलियों का बाज कहते हैं। तबले के किनार पर बजाने के कारण इस में चांटी के बोलों की प्रधानता होती है। इसलिये इसे चांटी या किनार का बाज कहते है।

१-८ अजराड़ा घराने का उद्‌गम और विकास

तबले के आज जो घराने जीवित है उनमें अजराड़ा, लखनऊ, फरुख़ाबाद, पंजाब, बनारस का नाम आदर पूर्वक लिया जाता है। वैसे भारत वर्ष में संगीत के क्षेत्र में उत्तर प्रदेश के जिन कलाकारोने योगदान दिया है वे अग्रगण्य है। लेकिन घराने बनाने याने स्थापित करने की योग्यता यहाँ के कलाकारो में थी। संगीत नृत्य की दुनिया में किसी भी घराने को पूर्ण मान्यता मिलने के लिये यह जरुरी होता है कि उस परंपरा में उस विधाका लगातार तीन पीढ़ियोंतक विकास होता रहे। इस दृष्टिसे तबले का आद्य दिल्ली घराना स्थापित होने के बाद लगभग सत्तर वर्ष बाद पूरी तरह से प्रतिष्ठित हुआ।[६२] इस में काफी मतमतांतर है। कितुं यह बाद सत्य है कि अजराड़ा घराने का स्थान द्वितीय क्रम में आता है। इस में कोइ संदेह नहीं है। कितने भी मतमतांतर हो किन्तु ऐतिहासिक तथ्यों पर दृष्टिपात करे तो अजराड़ा मेरठ जिले में एक छोटासा गाँव आज भी स्थित है। पुराने उस्ताद दिल्ली घराने का संपूर्ण तबला प्राप्त करके अपने गाँव वापस चले गये और केवल गुरुमुख से पायी गई विद्या पर आधारित न रहकर अपने कुशाग्र बुध्दि के अनुसार मनन चितंन कर अपने

---

६२ तबला पुराण पं विजयशंकर मिश्र पृष्ठ क्र ३५

नये विचारों को लोगों के सामने रखकर, मान्यता प्राप्त की लेकिन नये विचार सामने रखते हुऐ भी उन्होंने अपना खुदका नाम न देकर जिस गाँव मे रहते थे उसी गाँव का नाम देकर वापिस एक घराने को स्थापित करके एक सफल प्रयास इन कलाकारों ने किया।

पं. अरविंद मुलगांवकर का कथन है कि इस घराने की शुरुआत दिल्ली घराने के बाद तुरंत हुई। अजराडा घराने का जन्म अनुमानतः १७८० या इसके समकालीन माना जाता है। किन्तु आज के कई पुस्तकों के अंतर्गत यह घराना कोनसे साल में स्थापित हुआ इसका उल्लेख नहीं मिलता है। लेकिन कई विद्वानों ने इस घराने की नींव डालने का श्रेय ऊस्तद कल्लु खाँ एवं मीरु खाँ को दिया है। किंतु काफी शोध करते हुऐ डाँ. अजय अष्टपुत्रेजी के अप्रकाशित शोध प्रबंध से ज्ञान वर्धन करते समय एक बात की स्पष्ट रूपसे पुष्टि होती है कि, इस घराने की नीव कल्लु खाँ और मीरु खाँ से न हो कर मियाँ बसन्त से हुई है।[६३]

अजराड़ा घराने के उदगम के बारे में विभिन्न लेखकों के मत पाये गये है। लेकिन शोधार्थी का कथन है कि दिल्ली घराने की शुरुआत १७१० में मानी गयी है इसकी पुष्टि (पं अरविन्द मुलगावकरजी के तबला नामक)

---

६३ अ-प्रकाशित शोध ग्रंथ डाँ अजय अष्टपुत्रे वडोदरा

पुस्तक में प्राप्य होती है। यहाँ मन मे प्रश्न उठता है १७१० से १७८० तक समकालीन जितने विद्वान हुए, क्या उनके मन में नये घराने की नींव डालने का नहीं आया होगा? ७० साल के प्रदीर्घ प्रवास में निश्चित रुप से कोइ भी उस्ताद के मन में नये घराने की नींव डालने के लिये निश्चित रुप से संस्कार हुऐ होंगे। ऐसे किये गये संस्कारो को लोंगों द्वारा मान्यता १७८० में प्राप्त हुई होगी ऐसा शोधार्थी का विनम्र मत बनता है। इस बारे में प्रो सुधीरकुमार सक्सेनाजी का कहना है कि दिल्ली घराना पिता है, तो अजराड़ा घराना उसका पुत्र है।[६४]

ऐसी इस घराने में क्या विशेषता बनी थी कि इसकी अलग घराने में गिनती हुई? क्या वादन शैली के लिये या बोलों के लिये? दिल्ली बाज दो उंगलियों का बाज कहते हैं। यह तबले का प्रथम घराना होने के कारण इस घराने पर अन्य वाद्यों का असर पड़ा था याने ताशा, नक्कारा, ढोलक इन सभी वाद्यों को साथ लेकर उसकी प्रेरणासे बना था।[६५] इस घराने में बायें को जादा महत्व नहीं है याने उसे सिर्फ संधि के रुप मे देखा जाता था। इस बाज में किनार, चटक, टनक और तैयारी ने लोगो को खूब आकर्षित किया। किंतु साठ, सत्तर साल के अथांग परिश्रम के बाद अजराड़ा घराने के

---

६४ साक्षात्कार प्रों सुधिरकुमार सक्सेनाजी
६५ तबला पुराण पं विजयशंकर मिश्र पृष्ठ क्र ३५

खलीफाओं ने काफी विचार करने के बाद यह तय किया की तबला ऐसे दो भागों में बँटा हुआ है, दिल्ली घराना सिर्फ तबले पर मदार रखता है और बाये को सिर्फ संधि के रुप में देखा जाता है तो क्या बाये को महत्व नही हैं? उसी समय से अजराड़ा घराने के उस्तादों ने तय किया कि जितना महत्व तबले को है उतना ही महत्व बायें को क्यों न दे। उनका सोचना इतना ही था की तबले में बायें का भी महत्व है क्या वो सिर्फ सहारा और भराव पैदा करने के लिये ही है। बायें को विकसित करने के लिये सभी उस्ताद प्राण पण से जुट गये। इसी कारण पूरा तबला दिल्ली का होते हुऐ भी अजराड़ा घराने का बाज अलगसा हो गया। और एक स्वतंत्र वादन शैली के रुप में चमका। इन सभी कलाकारों ने बायें को महत्व देने के लिये ऐसे बोल चुने, याने दिल्ली बाज से अलग और बाये से तबले की शुरुआत हो। अजराड़ा के कलाकारोने घेतक् शब्दका चलन चलाया और मींड युक्त प्रयोग किया। याने घेतक् बोल का उपयोग अधिकता से करने लगे।[६६] सभी कायदे को आड़ चलन दे कर उसमें एक जान डाली उससे श्रोता वर्ग एवं वादक सुनने में और बजाने में झूम उठे। इसकी एक विशेषता यह भी थी की अजराडा घराने के कायदों में खाली नहीं थी।[६७] लय का अंदाज और उसमें डयोढ़ी लय बजाना

६६ तबला पुराण पं विजयशंकर मिश्र पृष्ठ क्र ३५
६७ साक्षात्कार प्रों सुधिरकुमार सक्सेनाजी

है बजाने में कितनी परिश्रम साध्य, कई कायदे तो ऐसे बनाये हैं कि प्रथम सीधी लय बादमें उसकी आड़ और फिर उसकी चौगुन में प्रस्तुति याने एक कायदे में तीन लय बजाना। प्रायः इस के कारण अजराड़ा बाज अधिक कठिन बाज बजाने के लिये हो गया।[६८] साथ संगत में भी इस घराने नें अपनी अलग स्थान बनाया और पूरे लोंगो पर छा गया। इसी लीये शोधार्थी का विनम्र आंकलन है कि ६०,७० साल स्थापना में लगे वो तथ्य पूर्ण बनता है पूरा बाज बजाने का उसका चलन तबले के दिल्ली घराने से ऐवं सभी घरानो से अलग बना है।

संगीतकार अपनें साज सुर में तो मीलाते है किंतु अजराड़ा घराने वाले सिर्फ तबला नही मिलाते साथ में बायें को भी ऐसा मिलाते हैं जैसे तबले को मिलाते है।[६९]

---

६८ साक्षात्कार प्रों सुधिरकुमार सक्सेनाजी
६९ साक्षात्कार प्रों सुधिरकुमार सक्सेनाजी